॥ ओ३म् ॥

जीवन यात्रा

लेखक

श्री अवतार कृष्ण भारद्वाज

प्रकाशक

सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट
एम-१०, लाजपत नगर नं० ३, नई दिल्ली-२४

प्रस्तावना

जीवन भगवान् की देन है, यह एक अनुपम अनुभव है, सर्व-प्रिय उपलब्धि है।

साधारण शब्दों में, हमारी स्थिति रेल-गाड़ी के मुसाफिरों की सी है। रेल-गाड़ी मुसाफिरों से अटी पड़ी है। खूब गहमा-गहमी है। कुछ मुसाफिर बात चीत में व्यस्त हैं, कुछ ताश इत्यादि खेलने में मस्त हैं और कुछ ऊंघ रहे हैं। गाड़ी खटाखट चली जा रही है। जब कोई स्टेशन आता है, तो कुछ मुसाफिर उतर कर अपनी-अपनी राह चल देते हैं। कुछ नए मुसाफिर गाड़ी में सवार हो जाते हैं और गाड़ी फिर आगे चल पड़ती है, और यह सिलसिला जारी रहता है। कभी-कभी गाड़ी में धक्का-पेल देखने को नजर आता है। मुसाफिर आपस में उलझ पड़ते हैं। गाली-गलोच और मार-पीट तक नौबत आ जाती है। मगर गाड़ी चलती रहती है।

हर सुबह सफ़र, हर शाम सफ़र।
आगाज सफर, अन्जाम सफर ।।

प्राय: इस बात पर आश्चर्य होता है कि हम हर छोटी-मोटी यात्रा के लिए तो अनेक प्रबन्ध करते हैं, सौ सामान जोड़ते हैं, परन्तु महान् जीवन-यात्रा के बारे में कभी सोचते तक भी नहीं। ज्यों-त्यों करके किसी प्रकार दिन काट लेते हैं। हंस लेते हैं, रो लेते हैं, खा लेते हैं, पी लेते हैं, सांस चलने को ही जीवन समझकर जी लेते हैं।

ऐसा होते-होते आखिरी समय आ पहुंचता है। सब काम ज्यों के त्यों छोड़, सब रिश्ते-नाते तोड़, दिल की दिल में लिए, आन की आन में, हम दुनिया से अकेले ही चल देते हैं—एक अज्ञात ध्येय की ओर, न जाने किधर। कवि लिखता है—

काल आई दिखराई साँटी।
उठ जिया चला छांड़ के माटी॥
हाथ झाड़ सब चले जुआरी।
तजा राज होइ चला भिखारी॥
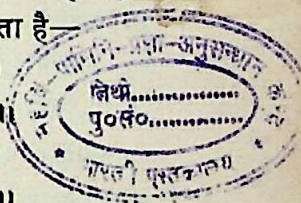
मर कर इन्सान कभी उसी शक्ल में वापिस दुनिया में नहीं आता। धीरे-धीरे उसकी स्मृति धुंधली पड़नें लगती है। एक समय ऐसा आता है जब उसकी याद बिल्कुल मिट जाती है, उसका नाम तक बाकी नहीं रहता। मानो, वह कभी था ही नहीं।

परन्तु जब तक इन्सान जिन्दा रहता है, वह किसी का ध्यान नहीं रखता। किसी को अपने बराबर नहीं समझता। वह भगवान् तक को भूल जाता है। कवि जब उससे पूछता है:—

बता ए खाक के पुतले, कि दुनिया में किया क्या है?
बता कै दांत हैं मुँह में तेरे, खाया पिया क्या है?
दुआएं लीं कभी, ठण्डा किया दिल दर्द-मन्दों का?
बुरे हालों में तू शामिल हुआ, मुहताज बन्दों के?
कभी कुछ काम भी आया, किसी आफत-रसीदा के?
कभी दामन से पूंछे तूने, आँसू आबदीदा के?

तो उसके पास, सिवाय शर्म से गरदन झुका लेने के, इसका कुछ उत्तर नहीं होता।

माना कि मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा बहुत समझदार और शक्तिशाली है, परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि हमारा यह क्षण-भंगुर मानवीय जीवन भी पानी के बुलबुले के समान ही है। कबीर जी लिखते हैं :—

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जाएगा ज्यों तारा परभात ॥

आखिर एक सांस के आने अथवा न आने पर ही तो हमारा जीवन निर्भर है। यदि कोई मौत को दूर समझता हो, तो उसे कभी-कभी श्मशान-भूमि अथवा कब्रिस्तान का चक्कर अवश्य लगा आना चाहिए। उसे निश्चय हो जाएगा कि :—

गूंजते थे जिसके डंके से, जमीन और आसमां।
चुप पड़े हैं कब्र में, अब हूँ न हाँ कुछ भी नहीं ॥

मानव-जीवन संचित कर्मों के फलस्वरूप ही प्राप्त होता है। इसमें हजारों मुश्किलें और मुसीबतें क्यों न हों, अनगिणत सुख भी हैं, जो अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं। हमारे लिए यही उचित है कि हम इस सुनहरे अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाएं और आत्मिक उन्नति तथा जगत्-कल्याण के लिए जो भी बन पड़े करें। जीवन अच्छी तरह न बिताने पर प्रसिद्ध कवि 'ग़ालिब' ने लिखा था :—

जान दी, दी हुई उसी की थी।
हक तो यह है, कि हक अदा न हुआ ॥

सौभाग्यवश प्राप्त हुए मानुषी जीवन को सार्थक बनाने का एक-मात्र मार्ग है सन्तोष और सेवा। इसी से जीवन देने वाले भगवान् का ऋण चुकाया जा सकता है। अच्छे कर्मों द्वारा

मानसिक शान्ति ही नहीं मिलती, बल्कि हम परमपिता परमेश्वर तक को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रकृति ने मनुष्य को अक्ल देकर उसे मालामाल कर दिया है। इन्सान वही है जो जीवन-यात्रा आरम्भ करते समय विचार-शक्ति से पूरा-पूरा काम ले। उसे निश्चय कर लेना चाहिए कि उसे किधर जाना है, कहां पहुंचना है और कौन-सा मार्ग अख्तियार करना है। उसे आने वाली तमाम बाधाओं के लिए समुद्यत रहना चाहिए। यदि उसने कोई बहुत बड़ा ध्येय अपने लिए निश्चित किया हो, तो उसे और भी अधिक जागरूक रहने की जरूरत है। कहा है :—

मुसाफिर जल्द उठते हैं,
जो जाना दूर होता है।
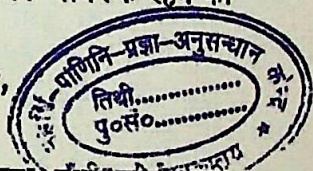
यद्यपि जीवन-पथ पर कोई संकेत अथवा साईनबोर्ड नहीं लगे रहते, तो भी निरीक्षण, परीक्षण, अध्ययन एवं चिन्तन द्वारा मनुष्य अपनी स्थिति के अनुसार कोई रास्ता निकाल ही लेता है। यदि वह केवल अपनी अन्तरात्मा की आवाज को ही सुनने का अभ्यास कर ले, तो वह कभी गलत रास्ते को अपना ही नहीं सकता।

दुनिया में आकर नाचो, कूदो, हंसो, खेलो। सच्चिदानन्द भगवान् ने यह संसार सबके सुख और कल्याण के लिए ही बनाया है। जीवन में आनन्द ही आनन्द है। दुःख तो केवल बुरे कर्मों का फल है। मौत भी नई जिन्दगी का पैगाम लिए हुए है। जीवन जीने के लिए है, काटने के लिए नहीं। अलबत्ता, जीवन में लिप्त न हो जाओ। कमल फूल की तरह, कीचड़ और जल से ऊपर

रहकर खिलना सीखो। तुम को 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का अंश कहा है :—

इक सरसरी निगाह से दुनिया को देखिए।
हरगिज निगाहें शौक से देखा न कीजिए॥
दरया की सैर कीजिए खूब शौक से मगर।
पानी में आग जाके लगाया न कीजिए॥

एक अन्दाज़े के मुताबिक, संसार में हर साल विभिन्न विषयों पर १२,००० नई पुस्तकें छपती हैं। ज़ाहिर है कि हमारे ज्ञान में धड़ाधड़ वृद्धि हो रही है। परन्तु खेद से कहना पड़ता है कि हमारा बढ़ता हुआ ज्ञान-भण्डार हमें आत्मिक उन्नति की ओर नहीं ले जा रहा है। आजकल मानसिक सुख और शान्ति बहुत थोड़े लोगों को प्राप्त है। सद्‌भावना और सौहार्द दिन-प्रतिदिन कम हो रहे हैं और जीवन की महक और मिठास मिटती जा रही है।

हमारा मुख्य उद्देश्य, सरल और सुगम भाषा में मानव जीवन का महत्त्व बतलाना है। यह ठीक है कि आजकल कोई किसी की बात को सुनने को तैयार नहीं, तो भी सफ़र के साथियों को अपने अनुभव के आधार पर ठीक परामर्श देना हमारा कर्त्तव्य है। मुझे पूर्ण आशा है कि यह प्रयास असफल नहीं होगा।

मानें न मानें, आपकी मरजी।
हम नेको बद हजूर को समझाए जाते हैं॥

अवतार कृष्ण भारद्वाज

३१ अगस्त, १९८२ मकान नं० ८८०, मुहल्ला गोविन्दगढ़,
जालन्धर शहर

जीवन पहेली
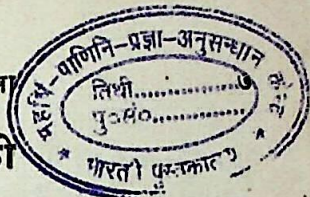
बहुत से लोग जीवन को 'पहेली' अथवा 'बुझारत' का नाम देते हैं । वह संसार के बृहत् प्रसार से भ्रमित हो जाते हैं, तथा जीवन के रहस्यों को पूरी तरह समझ नहीं पाते । बहुधा उनकी हालत बिल्कुल ऐसी ही होती है जैसे कोई व्यक्ति बेतार यन्त्रों से अनभिज्ञ होता हुआ भी रेडियो अथवा टेलीविजन के प्रोग्रामों का आनन्द प्राप्त कर लेता है । ईश्वर को पूरी तरह अनुभव न कर सकने के बावजूद और संसार की विशालता से अपरिचित होते हुए भी एक व्यक्ति साधारण तौर पर अपना जीवन व्यतीत कर ही लेता है । अलबत्ता ज्ञान की कमी के कारण ऐसे व्यक्ति का जीवन निचले स्तर का अवश्य रह जाता है ।

साइन्स और तर्क का आपस में गहरा सम्बन्ध है । साइन्स हमें बताती है कि संसार में कुछ भी अकारण नहीं । यदि इसी तथ्य पर विचार किया जाए, तो हम अनुभव करेंगे कि 'जीवन' भी जीवों की 'जीने की इच्छा' की पूर्ति-मात्र ही है । कोई भी जीव, चाहे वह किसी भी हालत में क्यों न हो, जीते रहना चाहता है । जब तक हमारा शरीर बना रहता है, आत्मा की यही सबसे अधिक मूल्यवान् आकांक्षा होती है । आत्मा शरीर छोड़ना नहीं चाहती। भारतीय शास्त्रों में इसी 'प्राणैषणा' को सबसे प्रथम और स्वाभाविक माना है। आत्मा की इसी प्रबल इच्छा को यदि सृष्टि रचना का मूल कारण मान लिया जाए तो कुछ अनुचित न होगा ।

जीवन कोई भुलावा या छलावा नहीं, कोई माया-जाल नहीं, यह भगवान् की अनुपम लीला है । यह एक खुली किताब के समान

है, यहां कुछ भी तो छिपा हुआ नहीं, सब कुछ हमारी नज़रों के सामने है। परन्तु हैरानी की बात यह है कि जो कुछ हो रहा है, वह चमत्कार से कम नहीं। एक महात्मा के कथनानुसार, भगवान् की बनाई हुई सृष्टि इतनी सम्पूर्ण और सुन्दर है कि जब हम इसे देखने लगते हैं तो देखते ही रह जाते हैं। हम इस हद तक इसमें खो जाते हैं, कि सृष्टि-निर्माता तक को भूल जाते हैं। इसके प्रतिकूल, जब कहीं किसी बिरले ईश्वर-प्रेमी को भगवान् से लौ लग जाती है, तो उसे सिवाय भगवान् के कुछ और सूझता ही नहीं। सारी की सारी सृष्टि उसकी नज़र से ओझल होने लगती है और वह बेअख्तियार पुकार उठता है :—

प्रभु से लौ लगी हो जब, तो फिर दुनिया से यारी क्या ?
हमन का इश्क मस्ताना, हमन को बेकरारी क्या ?

भारतीय आस्तिक शास्त्रों के अनुसार, जीव प्रत्येक बार नए सिरे से उत्पन्न नहीं होता। वह नित्य और सनातन परमेश्वर का नित्य एवं अनादि अंश हैं। विज्ञान ने सिद्ध किया है कि भौतिक द्रव्यों का नाश नहीं होता, वह केवल शक्ल बदलते रहते हैं। उदाहरण के तौर पर, लकड़ी जलकर धुआं, कोयला अथवा राख इत्यादि का रूप धारण कर लेती है। ठीक इसी प्रकार तत्व-ज्ञानियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि आत्मा अमर है, वह कर्मों के अनुसार नए-नए शरीरों में प्रकट होती रहती है, मरती नहीं। जब हम अपनी इच्छाओं और तृष्णाओं से ऊपर उठ जाते हैं, तो आत्मा को शान्ति प्राप्त हो जाती है और वह जन्म और मरण के चक्र से निकल कर परमात्मा में लीन हो जाती है।

आज मानव भौतिक प्रगति की चकाचौंध से चुन्धिया-सा
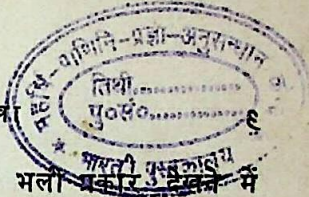
गया है। उसकी झिलमिलाई दृष्टि भली प्रकार देखने में असमर्थ है। फलतः वह पथ-भ्रान्त हो चुका है। ईश्वर-लीला के प्रसार को देख, वह उसके सार को भूल गया है। वह यह अनुभव नहीं करता कि दुनिया कर्म का रंग-मंच है। हर कर्म का ईश्वरीय नियमों के अनुसार न्यायपूर्ण फल मिलता है। इसी के सहारे दुनिया चल रही है। इसीलिए भगवान् को 'धर्मराज' के नाम से भी उदाहृत किया जाता है। इन्सान कुछ भी करे, उसको तदनुसार फल अवश्य मिलता है। सारी सृष्टि इसी कर्म और कर्मफल के न्याय पर आश्रित है।

यदि हम आंखें खोल कर देखें, तो आजकल हर जगह उदास चेहरे, भ्रान्त निगाहें, अस्थिर बुद्धियां और खिन्न मन दृष्टिगत होंगे। राग-रंग, खेल-तमाशे, सिनेमा-नाटक, बाहरी चमक-दमक सब एक गहरी आन्तरिक वेदना को छिपाए हुए हैं। सुख और शान्ति कहीं ढूंढ़ने से भी नहीं मिलते। हम खिलौनों से दिल बहलाना चाहते हैं। जिन्दगी की तीखी और कटु सच्चाइयों को मदिरा में डुबो कर भुलाने का यत्न करते हैं। हम कभी दौलत के पीछे भागते हैं, तो कभी शारीरिक सुख और सौन्दर्य पर मर मिटते हैं। कभी झूठे यश को प्राप्त करना चाहते हैं और कभी सत्ता की खोज में खो जाते हैं, परन्तु फिर भी 'दिल की लगी' नहीं बुझती।

कितना अशांत है वर्तमान जीवन ! कितना समस्यापूर्ण !! थके-हारे जीवन-पथिक, जीवन-भार उठाए, सिर झुकाए चले जा रहे हैं। गिरते, लुढ़कते, खाक छानते हुए, एक अनिश्चित, अज्ञात भविष्य की ओर बढ़े जा रहे हैं। ऐसा लगता है, मानो,

मानव के हाथों से जीवन निकलता जा रहा है और वह निस्सहाय और स्तब्ध खड़ा देख रहा है। कोई गुनगुनाने लगता है :—

लाई हयात आए, कज़ा ले चली चले।
अपनी खुशी न आए, न अपनी खुशी चले।।

ऐसे मौकों पर भाग्य अथवा भगवान् को कोसना हमें खूब आता है। हम दूसरों पर दोषारोपण के लिए सदा तैयार रहते हैं। अपने अन्दर कभी झांक कर भी नहीं देखते, हम भूल जाते हैं कि हमारी दुर्दशा का असली कारण हम स्वयं अथवा हमारे जैसे हमारे अन्य साथी हैं। हमारी अपनी ही करनी हमारे सामने आई है। ऐसा कहना कड़वा है, परन्तु है सत्य :—

नहीं देता कोई किसी को सजाएं।
सजा बन के आती हैं अपनी खताएं।।

स्वार्थ ने हमारी खुशियां लूट ली हैं। वैयक्तिक लोभ ने सामाजिक सौजन्य का दीवाला निकाल दिया है। जब पाप की गठरी सिर पर धरी है, तो फिर सिर धुनने से क्या फायदा? चीखना-चिल्लाना फिजूल और मिथ्या है। ईश्वरीय न्याय की तराजू में हम पूरी तरह तुल जाते हैं, रत्ती भर भी फर्क नहीं होता। कहा है :—

दाता मेरा बानिया, बनिज करे व्योपार।
बिन तकड़ी, बिन पालड़े, तोलत सब संसार।।

कर्मों के अनुसार हमें स्वतः फल मिलता रहता है। इसमें किसी प्रकार का पक्षपात अथवा अन्याय नामुमकिन है।

हर एक प्राणी अच्छी तरह जानता है कि पुण्य क्या है तथा पाप क्या है। निर्मल, स्वच्छ मन में सत्य का प्रतिबिम्बित होना स्वाभाविक है। कहा है :—

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिः।
जानामि अधर्मं न च मे निवृत्तिः॥

अर्थात् मैं धर्म को भली प्रकार जानते हुए भी धर्म के मार्ग का अनुसरण नहीं करता, तथा अधर्म को पहिचान कर भी मैं उससे बच नहीं पाता। इससे प्रत्यक्ष होता है कि विचारों की अपेक्षा कर्मों की महिमा और महत्व कहीं अधिक है। सत्य को पहिचान कर, उसके अनुसार जीवन को ढालने में ही हमारा कल्याण है। इस बारे में दो मत नहीं हो सकते। सत्य पथ पर चलते हुए कोई गुत्थी, कोई उलझन बाकी रह ही नहीं जाती।

कब, क्यों और कैसे ?

जीवन कब, क्यों और कैसे आरम्भ हुआ ? यह प्रश्न सदा प्रश्न ही बना रहेगा। इसका उत्तर न तो कोई आज तक दे सका है और सम्भवतः न कोई दे ही सकेगा। अनुमान लगाए जाते रहे हैं और अनुमान लगाए जाते रहेंगे। सवाल लाखों, करोड़ों, बल्कि अरबों वर्षों का है। कोई अन्दाजा भी लगाए तो क्या ! वैज्ञानिक, दार्शनिक, विचारक और तत्वज्ञानी चिरकाल से इस गुत्थी को सुलझाने में लगे हैं, परन्तु वे बात की तह तक नहीं पहुंच पाए, बल्कि रहस्य और भी गहरा होता जा रहा है। ऐसा दिखाई देता है कि मानव, जो विशाल विश्व का एक छोटा-सा

अंश-मात्र है, कभी उस अपरम्पार ईश्वर की अपार महिमा को नहीं जान सकेगा। कवि लिखता है :—

आदमी मर कर बता सकता नहीं मरने का हाल।
जीते जी वह ज़िन्दगी का राज़ पा सकता नहीं॥

वैज्ञानिकों ने बहुत छान-बीन की है, उन्होंने बहुत ऊंची-ऊंची उड़ानें भरी हैं। वे चन्द्रमा तक हो आए हैं और मंगल ग्रह तक पहुँचने की तैयारी में हैं। उन्होंने विशाल पहाड़ों को चीर कर रख दिया है। बेरोक बहने वाले दरियाओं को बांध दिया है। अणु-परमाणु के टुकड़े-टुकड़े कर उससे अमोघ शक्ति प्राप्त की है। उन्होंने सर्जरी (Surgery) में कमाल की मुहारत हासिल की है, परन्तु फिर भी वे यही कहते सुने गए हैं कि हम तो केवल अपार समुद्र के तट पर खड़े हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्होंने अभी तक केवल यही जाना है कि वे कुछ नहीं जानते।

ब्रह्माण्ड को जानना तो दूर रहा, उसका अनुमान लगाना भी मानुषी शक्ति से परे की बात है। वैज्ञानिकों के कथनानुसार, यह सृष्टि आज से अरबों साल पूर्व अस्तित्व में आई। पहले-पहल यह लावे के तेजी से घूमते हुए एक विशाल गोले का रूप धारण किए हुए थी। लावे के फटने, टूटने और विभिन्न भागों के रूप में ठण्डा होने पर सितारों और ग्रहों का प्रादुर्भाव हुआ। पूर्ववत् यह पिण्ड घूमते रहे और अपने मूल के चारों ओर चक्कर काटने लगे। पृथ्वी पर गर्मी होने के कारण वर्षा हुई। पहले हरियाली उत्पन्न हुई और फिर धीरे-धीरे जीव-जन्तु अस्तित्व में आए। आरम्भ में एक सैल (Cell) वाले जीव अमोबा (Amoeba) इत्यादि की उत्पत्ति हुई। बाद में बहुत सैलों

(Cells) वाले जीव प्रकट हुए। निरन्तर विकास और परिवर्तन के फलस्वरूप जीव अन्त में मानुषी आकृति को प्राप्त हुआ।

साईन्स हमें बताती है कि हमारी गैलेक्सी (Galaxy) अथवा तारापुंज, जिसे 'आकाश गंगा' भी कहते हैं, में लगभग १००,०००,०००,००० सितारे हैं। सूर्य के चारों ओर पृथ्वी समेत ११ ग्रह घूम रहे हैं और वह हमारी पृथ्वी से आकार में लाखों गुणा बड़ा है। वह भी केवल एक मध्यवर्ग का सितारा माना जाता है। हमारी गैलेक्सी की लम्बाई रोशनी के १००,००० साल और इसकी चौड़ाई रोशनी के १०,००० साल बताई जाती है। रोशनी एक सैकंड में १,८६,००० मील की दूरी तक पहुंच जाती है। इस गति से लगातार एक साल में रोशनी जितनी दूर पहुंच जाए, उसे रोशनी का एक साल मानते हैं। इससे हमारे तारापुंज की विशालता का अन्दाजा भली प्रकार हो सकता है।

इससे आगे चलकर, साईन्स हमें यह भी बताती है कि ब्रह्मांड में हमारे तारापुंज जैसी करोड़ों गैलेक्सियां (तारापुंज) हैं। भला फिर कोई अन्दाज़ा भी लगाए तो क्या? दिमाग़ चक्कर खाने लगता है, अक्ल जवाब दे जाती है। सब कुछ गणनातीत और अनुमान से भी परे प्रतीत होता है।

विचारकों और क्रान्तदर्शी ऋषि-मुनियों ने भी आन्तरिक योग की साधना से सत्य और ज्ञान की चरम-सीमा तक पहुंचने का यत्न किया है। भगवान् को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते उन्हें भी 'नेति-नेति' कहकर ही सन्तोष करना पड़ा है। तर्क और दलील के दायरे

बाहर निकल कर उन्हें भी आत्मानुभव के आधार पर श्रद्धा की ही शरण लेनी पड़ी है। ईश्वर को असीम, अनादि, अजन्मा, अन्तर्यामी, अज्ञेय इत्यादि नामों से उद्धृत करना इसी दृष्टिकोण का पोषक है।

ज्ञान हमें बताता है कि सृष्टि के अनेक व्यक्त पदार्थों में एक ही अव्यक्त मौलिक सत्ता है और विज्ञान हमें यह दर्शाता है कि किस प्रकार उस अव्यक्त सत्ता से सृष्टि की रचना हुई है। विज्ञान और ज्ञान की अन्तिम सीमाएं आखिर एक निर्विकल्प श्रद्धा में परिणत हो जाती हैं और मनुष्य ईश्वर के आगे नत-मस्तक हो जाता है। मानव ने ईश्वर के सैकड़ों रूप देखे हैं। उसे हजारों नामों से स्मरण किया है। परन्तु ईश्वर किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं। ईश्वर उस सर्वव्यापक, सर्व शक्तिमान् और सर्वान्तर्यामी सत्ता का प्रतीक है, जिसने संसार का सृजन किया है, जो जगत् का पालन-पोषण करती है और जो इसे नित्य नए रूप देती है। हम ईश्वर को राम, कृष्ण, अल्लाह, रहीम, वाहेगुरु तथा अन्यान्य रूपों में स्मरण करते हैं, केवल इसलिए कि निराकार की अपेक्षा साकार की पूजा हमें सहल और सुगम प्रतीत होती है। विकासवादी ईश्वर का नाम लेने से घबराएं तो और बात है, परन्तु वे भी एक असीम शक्ति द्वारा विश्व के संचालन में विश्वास रखते हैं। उस शक्ति को वे ढूंढ़ निकालने में इतने ही असमर्थ हैं जितना कि कोई और साधारण मनुष्य। उन्होंने केवल प्राकृतिक नियमों को, जिनके सहारे यह दुनिया खुद बखुद चल रही है, नये-नये नाम दे रखे हैं। उनकी अपेक्षा तो कर्मफल पर आश्रित ईश्वर-वाद कहीं अधिक न्यायोचित और हृदय-ग्राही है। सृष्टि की रचना के बारे

में शास्त्रों ने 'यथापूर्वमकल्पयत्' के आगे कुछ नहीं कहा। दूसरे शब्दों में, हम सर्वव्यापक भगवान् को अनुभव करते हुये भी उसे कोई विशेष रूप देने में अक्षम हैं। सृष्टि के आदि व अन्त को कोई भी नहीं जान सका। अतः हमारे लिये यही उचित है कि हम 'ज्ञेय' में विश्वास तथा 'अज्ञेय' में श्रद्धा के पथ को अपनाएं। वर्तमान स्थिति के अनुसार सरल सत्य यही है कि यह परिवर्तनशील संसार सदा से है और सदा रहेगा। इस सारी लीला के पीछे ईश्वरीय हाथ है। यह ज्ञान और तर्क से परे की बात है, यह अनुभव पर आधारित है, इसकी गवाही केवल आत्मा ही दे सकती है।

तू ही तू

पूछने वाले पूछते हैं कि भगवान् कहां है ?

उनसे पूछिए कि भगवान् कहां नहीं है ? क्या सृष्टिकर्ता के बिना इतनी सर्वांग सुन्दर सृष्टि का होना सम्भव है ?

स्वामी विवेकानन्द एक बार जापान गए। वहां उनकी एक नास्तिक से भेंट हो गई। नास्तिक ने अपने मकान के द्वार पर मोटे शब्दों में लिख रखा था—'God is nowhere'। स्वामी जी को एक अनूठी बात सूझी। उन्होंने 'Nowhere' में तनिक विराम देकर इसे 'Now here' के रूप में लिख दिया। नास्तिक जब प्रातः उठा, तो उसने देखा कि उसके गेट पर लिखा था—'God is now here'। नास्तिक सारी बात समझ गया। उसने सोचा कि परमात्मा को पहिचानना केवल ठीक ढंग

से देखने की ही बात है। उसकी सारी नास्तिकता जाती रही और वह सदा के लिए ईश्वर—भक्त बन गया। प्रसिद्ध कवि 'ज़ौक' लिखते हैं :—

चश्मे बिना ही नहीं है जौक।
वरना हर वर्ग उसके होने की दुहाई देता है॥

यदि तथ्यों को तर्क की तराजू पर तोला जाए, तो ईश्वरीय सत्ता के सर्वव्यापक होने पर कुछ सन्देह नहीं रह जाता। वैज्ञानिकों ने कुछ प्रमाणों के आधार पर बड़े-बड़े सिद्धान्त स्थापित किए है। उदाहरण के तौर पर, न्यूटन ने जब देखा कि हर वस्तु, वृक्षों के फल, पत्ते इत्यादि पृथ्वी की ओर ही खिंचे चले आते हैं, न कि आकाश की ओर, तो वह इस निश्चय पर पहुंचे कि पृथ्वी में 'Gravitational Pull' (गुरुत्वाकर्षण शक्ति) है। इसी प्रकार हम वायु को देख नहीं सकते, परन्तु उसके होने से इन्कार भी नहीं कर सकते। बिजली को कोई पकड़ नही पाता, मगर उसकी शक्ति से सभी परिचित हैं। रेडियो की लहरों को किसी ने चलते नही देखा, परन्तु वे क्षण भर में चारों दिशाओं में फैल जाती है। भगवत्-सत्ता वायु, बिजली अथवा रेडियो की लहरों से कहीं अधिक सूक्ष्म है। इसके बिना यह संसार एक क्षण भी नहीं चल सकता। भगवान् की बनाई हुई हर चीज, जड़ और चेतन, में अनुपम व्यवस्था है, नियमितता है, उपयोगिता है, आकर्षण है। सूर्य, चांद और तारों की आभा से लेकर, जल-थल, पृथ्वी और आकाश, सब जगह ज्योतिर्मय भगवान् ही विद्यमान नजर आते हैं। स्वच्छ नदियां, गगनचुम्बी पहाड़, हरियाले खेत, घने जंगल, विशाल रेतीले मैदान, विभिन्न

प्रकार के जीव-जन्तु, सब भगवान् की कारीगरी के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। बोज में निहित शक्ति, जिससे वृक्ष, फल और फूल उत्पन्न होते हैं, इन्सान को चकित कर देती है। बीज के तमाम गुणों का उपज में भी उपस्थित होना एक चमत्कार से कम नहीं। और तो और, मानुषी देह की बनावट, शरीर में नस-नाड़ियों का जाल, दिल अथवा खून को गति—सब हैरान करने वाले करिश्मे हैं। हमारे दिमाग में करोड़ों सैल (Cell) हैं। इसके विभिन्न भागों में ताल-मेल द्वारा ही हमारो शारीरिक गति नियन्त्रित होती है। विज्ञान की बड़ी से बड़ी खोज भी, चिन्तन शक्ति के केन्द्र इस छोटे से ईश्वरीय यन्त्र ही की उपज है। सोचने की बात है, यह दिमाग किस की देन है? दिल यही कहता है :—

यह नूर उसका है, जहूर उसका है।
तू न समझे, तो कसूर किसका है?

फिर भी यदि कोई नेत्र-हीन व्यक्ति सूर्य की प्रभा को देख न सके, तो यह उसकी अपनी ही न्यूनता है। सूर्य के अस्तित्व पर किसी को सन्देह नहीं हो सकता।

हम कई बार ज़िन्दगी के छोटे-छोटे सवालों को हल करने के लिए तो घण्टों खर्च कर देते हैं, परन्तु जहां परमात्मा के होने अथवा न होने का सवाल होता है, हम अपनी सामयिक मानसिक स्थिति के अनुसार जो मुँह में आता है कह देते हैं। परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव कोई सहज बात नहीं। इसके लिए मन की अपूर्व एकाग्रता और पूर्ण श्रद्धा की जरूरत है। कबीर जी कहते हैं :—

जिन ढूंढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ ॥

आजकल का इन्सान तो चाहता है कि जिस प्रकार बिजली का बटन दबाने से रोशनी हो जाती है, उसी प्रकार इच्छामात्र से ईश्वर उसके सामने प्रकट हो जाए, और जो कुछ वह कहे उसे कर दिखाए। भगवान् क्या हुआ एक निपुण नौकर हो गया, जो अपने मानवीय मालिक के इशारों पर दिन-रात नाचता फिरे। इससे बढ़कर हमारी अल्पज्ञता का और क्या प्रमाण हो सकता है ?

भगवान् तो हर समय, हर जगह विराजमान है। वह सदा हमारे अंग-संग रहते हैं। वह तो हमारे श्वासों से भी अधिक हमारे नज़दीक हैं। हमारी तो मार्मिक आँखें ही नहीं, जो उन्हें देख सकें। जो अनुभवी जीव हैं, उन्हें कण-कण में भगवान् दृष्टिगोचर होते हैं। वह तो अनुभव करते हैं :—

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।
जहां ढूंढता हूँ, वहां तू ही तू है ॥

हमारे परमात्मा को मानने अथवा न मानने से भगवान् को कुछ फ़रक पड़ने से रहा ! भगवान् को यदि हम स्मरण करते हैं तो अपने लिए। उसे भूल कर इन्सान स्वयं ही गिरावट के गड्ढे में जा गिरता है। प्रतिकूल इसके, परमात्मा के समीपत्व का आभास इन्सान को हर बुराई से बचाता है। दिन और रात के २४ घण्टों में से कम से कम १२ घण्टे तो भगवान् के सिवाए और कोई हमारे पास नही होता। यदि हम ऐसे समय कभी ग़लत

बात सोचें भी, तो हमारी आन्तरिक आवाज़ ज़रूर चेतावनी देगी—'खुदा देखता है, खुदा देखता है।'

जिस प्राणी को भगवान् का डर न हो, तो उसे डर किसका ? भगवान् से विमुख होकर इन्सान कौन-सा पाप नहीं कर गुज़रता ? यह नहीं कि उसे पाप की सज़ा नहीं मिलती। पाप की सज़ा जरूर मिलती है। उसके लिए ईश्वर के अटल नियम हैं। परन्तु यदि इन्सान सच्चे मन से ईश्वरीय सर्वव्यापकता का समर्थक हो, तो वह पाप करेगा ही नहीं। आजकल की व्यापक नास्तिकता ही वास्तव में हमारे अधःपतन का मूल कारण है। कहा है :—

इक ईश्वर दे भुल्लियां, व्यापन सब्भे रोग।

कर्मों का फल

प्रकृति अनादि काल से सृष्टि को नियम-बद्ध रूप से चला रही है। उसकी गति अनिरुद्ध है, अविरल है। वास्तव में, निरन्तर गति ही जीवन का चिह्न है, इसका मूलाधार है।

प्रकृति के विशाल कारखाने में सब कार्य-रत हैं। कर्म-चक्र कभी थमता ही नहीं। धर्मज्ञों ने तो यहां तक कहा है कि कर्म प्रलय में भी नष्ट नहीं होते। अर्थात् सृष्टि के संहार के समय भी ये बीज रूप में विद्यमान रहते हैं। ज्यों ही सृष्टि की फिर से रचना होती है, पूर्व कर्मों के अनुसार प्राणी एक बार फिर विभिन्न योनियों में प्रकट हो जाते हैं।

इन्सान, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, सब ईश्वरीय कर्त्तव्य-संहिता के अधीन हैं। हर कर्म का उपयुक्त फल है, नतीजा है। जो हम करते हैं, तद्नुसार हमें फल प्राप्त हो जाता है। अन्य जीव-जन्तु तो बहुत हद तक अपने पूर्व कर्मों का फल भोगने के लिए ही पैदा होते हैं, परन्तु मनुष्य कर्म करने में काफ़ी स्वाधीन है। जहां और योनियां भोग-योनियां कहलाती हैं, मनुष्य योनि को कर्म-योनि कहलाने का श्रेय प्राप्त है। यदि यह कहा जाय कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है, तो यह अतिशयोक्ति न होगी।

सृष्टि में पूरा-पूरा न्याय होता है। यदि भगवान् ने हमें कर्म करने की पूरी आजादी दे रखी है, तो उसके नियमानुसार उनका उचित फल मिलना भी जरूरी है। इसमें किसी प्रकार के पक्षपात अथवा अन्याय का सवाल ही नहीं उठता। हमारे कर्मों का फल तो हमें जीवन-काल में ही मिल जाता है। शेष जो कर्म हम करते हैं, वे हमारे मानसिक मीटर में पूरी तरह रिकार्ड होते चले जाते हैं। अन्त समय तक जो भी हमारा रिकार्ड होता है, तथा जैसी भी हमारी मानसिक स्थिति होती है, हमें वैसी ही योनि प्राप्त हो जाती है। उदाहरण रूप, यदि हम आजीवन दूसरों के प्रति विष घोलते रहें, उन्हें नुकसान पहुंचाने अथवा डसने पर तत्पर रहें, तो निश्चित रूप में हमें सर्प, बिच्छू इत्यादि योनियां ही प्राप्त होंगी। इसमें प्रकृति को कुछ विशेष यत्न नहीं करना पड़ता। ऐसा नियमानुसार खुद-बखुद हो जाता है। विचारक तो यहां तक कहते हैं कि हर आत्मा स्वयं अपना शरीर ढूंढ लेती है—Every soul finds

its own body'। जो कोई जैसे कर्म करता है, उसे वैसी योनि मिलनी स्वाभाविक है, अनिवार्य है।

यदि हम एक साधारण-सी दृष्टि अपने इर्द-गिद डालें तो हमें ज्ञात होगा कि यह संसार कर्मों का ही खेल है। यहां कर्म प्रधान हैं, कर्म ही प्रबल हैं। विविध योनियां कर्म-फल की मुंह बोलती तस्वीरें हैं। कुत्ता, सूअर, बन्दर, गधा इत्यादि योनियां जीवों को कर्मों के अनुसार ही मिली हैं। यदि भगवान् अपनी मर्जी से किसी को कुत्ता, किसी को सूअर, किसी को बन्दर और किसी को गधा बना देते, तो वह न्यायकारी नहीं कहलाते। सृष्टि-कर्त्ता ऐसा अन्याय कर ही नहीं सकता।

कई बार हम बुरे आदमियों को खूब फलते-फूलते देखते हैं। चोरों, दग़ाबाजों और घूसखोरों को बाहुल्य और खुशियों से ओत-प्रोत पाते हैं, तो हमें हैरानी होती है और किसी हद तक दुःख भी होता है। हमें भगवान् के न्यायकारी होने पर शक होने लगता है और कभी-कभी हम भगवान् से विद्रोह भी कर बैठते हैं। हम भूल जाते हैं कि भगवान् के घर में देर बेशक हो, अन्धेर नहीं है। वैसे भी, हर कर्म का फल उसी समय मिलना नामुमकिन है। थोड़ा-बहुत समय तो लगता ही है, तभी जाकर किसी काम का नतीजा निकल सकता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि चोर को जलेबियां खाते हुए न देखो; उसे उस समय देखो जब उसे मार पिट रही हो, ताकि नसीहत हासिल हो।

भगवान् जितने दयावान् हैं, उतने ही कठोर भी हैं। भगवान् की चक्की धीरे-धीरे चलती है, परन्तु पापी को पीस के रख देती है। जिस पर भगवान् नाराज हो जाएं, उसका कोई ठिकाना

नहीं, कोई बचाव नहीं। भगवान् की बे-आवाज़ लाठी मनुष्य को चकना चूर करके रख देती है। आत्मा तक कांप उठती है।

मनुष्य योनि प्राप्त कर जीव कर्म-क्षेत्र में जा पहुंचता है। भगवान् ने अच्छा-बुरा जानने की विवेकात्मक बुद्धि उसे दे रखी है। वह बुद्धि के बल पर ही इस संसार में विचरता है। यदि वह उन्नति की ओर कदम उठाए तो आकाश तक को छू लेता है, परन्तु यदि गिरने लगे तो गन्दी नाली का कीड़ा बन कर रह जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि मनुष्य दूसरों के हाथों से दुःखी होता है। दूसरे उसका जीवन दूभर बना देते हैं। दुष्ट अपनी दुष्टता के कारण अच्छे, भले लोगों का सुख और शान्ति लूटने का यत्न करते हैं। निस्सन्देह ऐसे लोगों को, समय आने पर, अपने दुष्कर्मों का पूरा-पूरा फल मिलता है। परन्तु मनुष्य होने के नाते हम पर भी यह कर्त्तव्य लागू होता है कि हम समाज-द्रोही तत्त्वों पर नियन्त्रण रखें और उन्हें नियम और मर्यादा पर चलाएं। हमें किसी अनियमितता से समझौता नहीं करना चाहिए, किसी पाप को पनपने नहीं देना चाहिये। गाँधी जी के कथनानुसार, अन्याय को सहन करना परले दरजे की कायरता है, अक्षम्य अपराध है। दुर्योधन के अन्याय पर उतारू होने पर ही श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीतारूपी अमृत पिलाया था और उचित अधिकारों की रक्षा के लिए युद्ध करने की प्रेरणा दी थी।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन को सारयुक्त और गौरवमय बनाए। ज्ञान हासिल करके यह निश्चय करे कि

श्रेय कर्म कौन से हैं और प्रेय कौन से। केवल प्रेय कर्मों को ही न अपना ले, भोगों में जीवन न गुजार दे। जीवन-ध्येय को ही न भूल जाए। हमारा मन अत्यन्त चञ्चल है। बहुधा इसी के कारण हम मारे-मारे फिरते हैं। भटकना हमारा भाग्य बन गया है। हम मन की कारस्तानियों से वाकिफ नहीं। अनियन्त्रित मन एक बेलगाम घोड़े की तरह हमें लिए फिरता है। कहा है :—

मन लोभी, मन लालची, मन चञ्चल, मन चोर।
मन की मति न मानिए, पलक-पलक में और॥

जीवन-ध्येय सदा अपने सामने रख, भगवान् में अगाध श्रद्धा धारण कर, हमें निरन्तर शुभ कर्मों में लगे रहना चाहिए। यही धर्म है। मनुष्य को चाहिए कि फल अथवा परिणाम में आसक्ति न रखे, केवल शुभ कर्म करता चले। फल की प्राप्ति अपने बस की बात नहीं। गीता कहती है :—

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।

यह देखने की बात है कि आजकल के गए-गुज़रे ज़माने में भी अच्छाई की कद्र-कीमत कम नहीं हुई। सब नेकी और अच्छाई को ढूंढ़ते हैं। बुरे से बुरा इन्सान भी अच्छे लोगों की तलाश करता है। उसे सच्चे दोस्त चाहिएं। अच्छी सन्तान चाहिए। नेक बीवी चाहिए। हितैषी सम्बन्धी चाहिएं। यदि यही अच्छाइयां इन्सान अपने अन्दर पैदा करे तो वह वास्तव में सुखी हो सकता है। पापी को सुख और चैन कहाँ ?

प्रायः देखने में आता है कि लोग अपनी विचारशक्ति को

काम में नहीं लाते। वह जीवन को एक मेला समझते हैं। मेले के धक्के में जो कोई जिधर निकल गया, निकल गया। जो देखा, खा-पी लिया। मिट्टी के खिलौनें खरीद लिए। काठ के घोड़ों की सवारी कर ली। यह सब कुछ किया कौतुक-वश। केवल यह देखने के लिए कि आखिर यह तमाशा है क्या। उनसे यदि कोई यह पूछे कि जब आप औरों को धक्के खाते गिरते और खाक छानते हुए देखते हो, तो तुम्हारे लिए कौन-सा कौतुक रह जाता है? इसका उनके पास कोई उत्तर नहीं।

हमें जीवन संयम और नियम से व्यतीत करना चाहिए, ताकि इसके रंग और रूप में और भी निखार आए। प्रायः हमारी निजी स्वार्थं भावना ही हमें ले डूबती है। मानसिक संकीर्णता सब झगड़े-फिसादों की जड़ सिद्ध होती है। जीवन वास्तव में जंजाल नहीं, बल्कि मोक्ष का द्वार है। दिवंगत स्वतन्त्रता सेनानी डा० हरदयाल ने अपनी पुस्तक 'Hints for Self-Culture' में लिखा है कि मनुष्य जीवन के बारे में व्यापक रूप से सोचे, न कि सामयिक स्थितियों को सामने रख संकुचित दृष्टि से। उनके लेखानुसार, यह जीवन एक अनुपम अनुभव है। यह किसी की निजी सम्पत्ति नहीं, किन्तु सारे समाज की पूंजी है। जीवन हमें प्राचीन पद्धतियों को चलाने और उन्हें अधिक श्रेयस्कर बनाने के लिये मिला है। हमारा सर्वोत्तम ध्येय विश्व-कल्याण है। हम भूत काल और भविष्य काल के मध्य में खड़े हैं। हमें चाहिए कि हम वर्तमान का इस प्रकार प्रयोग करें कि सारा संसार उससे लाभान्वित हो। हमें अपने अनुभव और आचरण द्वारा ऐसी अमर-ज्योति जलानी चाहिए, जिससे आने वाली

पीढ़ियों का पथ-प्रदर्शन हो सके और वह ऊंचे आदर्शों और कीर्तिमानों को प्राप्त करने में प्रयत्नशील हों।

जीवन यात्रा की तैयारी

जीवन यात्रा के लिये हमें किसी विशेष साज़ो-सामान की जरूरत नहीं होती। मन को सुविचारों से सुसज्जित कर लेना ही जीवन यात्रा की सबसे बड़ी तैयारी है। जैसा कि हम जानते हैं, हमारी विचार पद्धति पर ही हमारी तमाम सांसारिक क्रियाएं आधारित होती हैं। हमारा जीवन स्वतः ही हमारे दृष्टिकोण के अनुसार ढलता चला जाता है। अलबत्ता इर्द-गिर्द के वातावरण अथवा सामाजिक परिस्थितियों का इस पर प्रभाव जरूर पड़ता है। साधारण लोग तो प्रायः समाज के हाथों कठ-पुतली बनकर रह जाते हैं, परन्तु कोई-कोई कर्त्तव्यनिष्ठ प्राणी निर्भीक सत्य मार्ग का अनुसरण करता है, कभी पथ-भ्रष्ट नहीं होता। अक्सर देखने में आया है कि ऐसे आदमी समाज को बदल के रख देते हैं। कभी-कभी तो वह दुनिया तक को हिला देते हैं। ऐसे महापुरुषों के बारे में कहा गया है :—

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा।
न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

परन्तु ऐसे लोगों की गिनती बहुत कम है और दिन प्रति-दिन और भी कम होती जा रही है। वास्तव में मनुष्यत्व का मान और गौरव इन्हीं लोगों पर निर्भर है। ऐसे लोगों के अभाव से मानुषी प्रतिष्ठा का ह्रास होना अनिवार्य है। आज का

इन्सान भौतिक दृष्टि से कितना ही उन्नत क्यों न हो, उसमें सच्चे मानुषी लक्षण, प्रेम, भ्रातृभाव, दया, धर्म इत्यादि कम हो रहे हैं। कवि फ़िराक गोरखपुरी लिखते हैं :—

अक्ल बारीक हुई जाती है।
रूह तारीक हुई जाती है॥

तो भी, दुनिया में हर किस्म के लोग मिलते हैं,—अच्छे, बुरे, पढ़े-लिखे, अनपढ़, ज्ञानी, मूर्ख, झूठे, सच्चे। वे सब समाज के अभिन्न अंग हैं। सब प्रकार के लोगों को मिलाकर ही यह दुनिया बनी है। इसलिए हमें स्थितियों के परिवर्तन के लिये तैयार रहना चाहिए। सदा एक समय नहीं रहता। कभी सुखद समीर चलती है, तो कभी आंधियां और तूफान उठनें लगते हैं। कहीं आनन्द और मंगलाचार का साम्राज्य होता है, तो कहीं असहनीय दुःख और घोर अशान्ति देखने में आते हैं। संसार में सर्वत्र प्रेम और आनन्द ही नहीं, यहां संघर्ष और कटुता भी हैं। सौहार्द और मित्रता ही नहीं, चालाकी और मक्कारी भी देखने में आती हैं। जीवन की राहें सरल और सीधी ही नहीं, टेढ़ी-मेढ़ी और पेचदार भी हैं। यहां हर मोड़ पर खतरा है, पग-पग पर गिरने का डर है। जगह-जगह चोर और डाकू घात लगाये बैठे है। कहा है :

राहज़न हैं कि तनहा भी गुजरने नहीं देते।
दिल है कि अरमानों की बारात लिए है॥

हर जीवन-पथिक के लिये सावधानी आवश्यक है। लोग दोस्ती के नाते दुश्मनी कर दिखाते हैं। भोले-भाले, बेबस लोगों को धोखा देने की कोशिश करते हैं। आंखों में धूल झोंककर,

चलते-फिरते जेबों पर हाथ साफ कर जाते हैं। अपने छोटे से स्वार्थ के लिये दूसरों का बड़े से बड़ा नुकसान करने से नहीं सकुचाते। धर्म के ठेकेदार बन कर, ईश्वर के नाम पर उसके बन्दों से ठगी करते हैं। व्यापार के नाम पर झूठ बोलते हैं और कम तोलते हैं। आत्मा की आवाज उन्हें सुनाई नहीं देती। परमात्मा को वे मानते ही नहीं।

ऐसी दुनिया में जरा सी असावधानी भी कई बार बहुत मंहगी पड़ती है। सतर्कता में ही सुख है। किसी बुद्धिमान् पुरुष ने हर आदमी को सम्राट् सुलेमान की भांति सुप्रज्ञ होने और राजहंस की तरह निर्लेप ओर निष्पाप रहने का परामर्श दिया है। जो इन्सान दुनिया को समझने का यत्न नहीं करता, इसकी कुटिलता को नहीं पहिचान पाता, वह भी परले दरजे का बुद्धू है। ऐसी सरलता भी क्या कि हर कदम पर धोखा ही खाते चले जाएं। मनुष्य को चाहिए कि वह ज़माने की हर चाल को अच्छी तरह पहचाने और अपने बचाव का पूरा-पूरा यत्न करे। यह जीवन भेड़ियों और भ्रष्ट तत्त्वों के हवाले नहीं किया जा सकता। हमें इस दुनिया में रहना है, यह हमारी दुनिया है। यह दूसरी बात है कि हमें राजहंस की भांति किसी को दु:ख न पहुंचाने का व्रत धारण करना चाहिये। अनजाने में यदि हमें किसी के द्वारा आघात भी पहुंचे, तो हमें उसे क्षमा कर देना चाहिए। कई बार क्षमा, दण्ड से भी अधिक गुणकारी सिद्ध होती है। परन्तु धूर्त लोगों को क्षमा करना भूल ही नहीं, पाप है। इससे धूर्तपन को उत्साह मिलता है।

देखने में आता है कि लोगों में बदला लेने की भावना बहुत प्रबल होती है। वैर-विरोध मिटने में ही नहीं आता। कई बार छोटी सी बात का बतंगड़ बन जाता है। एक मामूली सी नाचाकी दुश्मनी में बदल जाती है, तुच्छ सा मन-मुटाव एक सतत जलन में परिवर्तित हो जाता है। हमारे 'अहंभाव' को जब ठेस पहुंचती है तो हमारा क्रोध जाग उठता है। हम दुनिया को ठुकराने को तैयार हो जाते हैं और सबको निकृष्ट समझने लगते हैं। आजकल यह 'अहंभाव' बुरी तरह समाज में घर कर गया है। हम किसी को कुछ समझते ही नहीं। हम सोचते हैं कि दुनिया हमारी दया-पात्र बनकर ही दिन गुज़ार सकती है। दूसरे भी हमारे प्रति ऐसी ही भावनायें रखते हैं। नतीजा हमारे सामने है। कहा है :—

रसमे मेहरो वफा नहीं बाकी।
आदमी-आदमी से बरहम है॥

इस प्रवृत्ति का केवल इलाज ठंडा मस्तिष्क और नम्रता है।

जीवन यात्रा की सबसे बड़ी जरूरत है स्वास्थ्य—शारीरिक एवं मानसिक। बिना स्वास्थ्य के जीवन अजीर्ण बन जाता है। अच्छा स्वास्थ्य स्वच्छ भोजन, व्यायाम एवं संतुलित जीवनचर्या पर निर्भर होता है। आजकल पहले तो स्वच्छ भोजन ही उपलब्ध नहीं होता। यदि मिल भी जाये तो कीमतें इतनी ऊंची हैं कि साधारण आय वाले लोगों के लिये इन्हें खरीदने का सामर्थ्य नहीं होता। फलस्वरूप, जो कुछ मिलता है हम खा लेते हैं। कई बार केवल मुंह के स्वाद के लिये अनिष्ट पदार्थों का सेवन भी करते हैं, जैसे मांस-मदिरा,

सिगरेट इत्यादि। मांस खाने में तो कई बार हम खूंखार जानवरों को भी पीछे छोड़ जाते हैं। मदिरा की दुकानें ऐसे चल रही हैं, मानो प्यासे लोगों के लिये पिग्राऊ स्थापित किये गये हों। गुरु नानकदेव जो ने मांस-भक्षण के विरुद्ध निम्न-लिखित विचार प्रकट किए हैं :—

क्या बकरी, क्या गाए और क्या अपना जाया।
लहू सबका एक है, साहिब फरमाया॥
पीर, पैगम्बर, औलिया, सब मरने आया।
नानक जीव न मारिए, भरने को काया॥

दया-धर्म की बात तो अलग रही, मांस का सेवन वैसे भी मानव-शरीर के लिए हितकर नहीं। जैसा हमारा खान-पान होगा, वैसा ही हमारा खून बनेगा, वैसी ही हमारी बुद्धि होगी। गर्म और तेज पदार्थ सेवन करने से हमारे खून में तेजी और जोश आना स्वाभाविक बन जाता है और होश जाते रहते हैं। सोवियत देश के प्रख्यात विचारक 'टालस्टाय' कहा करते थे कि यदि मनुष्यों का खाना-पीना ठीक हो जाए, तो दुनिया के आधे दंगे-फसाद खत्म हो जाएं। परन्तु लोग तो चटखारे लेने के आदी हो गए हैं। उनकी समझ में यह बात कब आने लगी ? यहां तो सोसायटी और फैशन के नाम पर अनर्थ होते हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि 'ज़ौक' लिखते हैं :—

ए ज़ौक, गर है होश, तो दुनिया से दूर भाग।
इस मैकदे में काम नहीं होशियार का॥

सिगरेट पीने की आदत हमारे नवयुवकों में घर कर गई है। वह इसे फैशन समझते हैं। हम अक्सर चन्द घड़ियों की

झूठी तसल्ली के लिए जीवन भर का दुःख मोल ले लेते हैं और बुरी आदतों के शिकार बन जाते हैं। फिर हम इन आदतों के गुलाम बन जाते हैं और कई बार हमें बहुत दुःख उठाना पड़ता है।

स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो लोग काम-वासना को खुली छुट्टी देने के हक में हैं, वे कभी सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। काम-वासना को आत्म-संयम से ही वश में किया जा सकता है। हम अक्सर भूल जाते हैं कि विषय-वासना तो प्राकृति की ओर से सृष्टि को चलाए रखने का एक साधन है। समय आने पर यह हर प्राणी में प्रकट होती है। परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम अपनी काम-वासनाओं को खुली छुट्टी दे दें। काम-वासना को 'प्रेम' कहना तो और भी अनुचित है। हम इसके भयंकर परिणामों से पूरी तरह परिचित हैं। अफ़सोस से कहना पड़ता है कि हम अपने उच्च आदर्शों को भूल कर गिरावट की ओर जा रहे हैं। अश्लील लेख, नग्न तस्वीरें, चरित्र-घातक सिनेमा, हमारा रहन-सहन, हमारी पोशाक और हमारा सोचने का ढंग, सब हमारी काम-वासनाओं को उत्तेजित करने में सहायक सिद्ध होते हैं और अधःघपतन के गढ़े में गिरते समाज का कदम थमने में नहीं आता। अनियमित विषय-वासना अपने खून से होली खेलने के बराबर है। हम यह नहीं सोचते कि यह नाशकारी खेल आखिर कब तक खेला जा सकता है? भर्तृहरि के कथनानुसार :—

भोगा: न भुक्ता:, वयमेव भुक्ता:।
तपो न तप्तं, वयमेव तप्ता:॥
तृष्णा न जीर्णा, वयमेव जीर्णा:।
कालो न यातो, वयमेव याता:॥

पचास प्रतिशत बीमारियों का मूल-कारण हमारी विषय-वासना में अनियमितता है। यदि हम स्वास्थ्य के नियमों को ठीक तरह समझ लें, तो हमारी बहुत-सी मुश्किलें हल हो जाएं। बढ़ती हुई आबादी का सही इलाज सन्तति-निरोध नहीं, आत्म-संयम है। इससे हमें स्वास्थ्य और सुख दोनों प्राप्त हो सकते हैं।

बात केवल दिल को सम्भालने की है। जिसने इसको सम्भाल लिया, वह सम्भल गया। यौवन काल में, जब काम-पिपासा जाग उठती है, तो हमें बहुत सोच-विचार कर चलने की जरूरत होती है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि एक प्यासा प्राणी स्वच्छ, निर्मल जल से अपनी प्यास बुझा सकता है और कोई दूसरा, धीरज खोकर, गन्दे पानी से भी अपनी तृष्णा शान्त कर लेता है। समझदार वे लोग हैं जो अपने आप पर नियन्त्रण कर, समाज और कानून को ध्यान में रख, मर्यादा-अनुसार गृहस्थ बन्धनों को स्वीकार करते हैं और सच्चे गृहस्थियों के रूप में अपना जीवन बिताते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा के अनन्तर, हमें रोजी कमाने का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसे ही शास्त्रों में धनैषणा कहते हैं। जो मनुष्य अपनी मौलिक जरूरतों—रोटी, कपड़ा, मकान इत्यादि के लिए दूसरों पर आश्रित है, उसे सुख की नींद नसीब होनी

कठिन है। इनको प्राप्त करने के लिए जीविका अर्जित करना जरूरी बन जाता है। चाहे हम कितने भी आदर्शवादी क्यों न बन जाएं, हम शारीरिक जरूरतों से ऊपर नहीं उठ सकते। भूख-प्यास तो हमें लगेगी ही। सिर छुपाने के लिए हमें मकान तो चाहिए ही, तथा तन ढांपने के लिए वस्त्र इत्यादि भी आवश्यक हैं। इन जरूरतों को पूरा करने के लिए हमें सौ पापड़ बेलने पड़ते हैं, मेहनत करनी पड़ती हैं। और तो और, हम जठराग्नि को ही बड़ी मुश्किल से शान्त कर पाते हैं। कई बार, शारीरिक जरूरतों को पूरा करने के लिये मन पाप भी करने को उद्यत हो जाता है। यह सर्वथा अवांछनीय है। जीविका अर्जित करने अथवा धन कमाने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि हम धर्म के पथ से विचलित न हों।

धन कमाने के लिए आत्मा को बेचना एक मंहगा सौदा है। धन कमाना जीवन का लक्ष्य नहीं। एक दिन सब धन-दौलत, जमीन-जायदाद, कारें, टेलीविजन तथा अन्यान्य आनन्द के पदार्थ यहीं छोड़कर, खाली हाथ, हमें इस दुनिया से चले जाना पड़ता है। पाप से एकत्र किया धन किस काम का ? सत्य और धर्म का पालन करते हुए यदि हमें सूखी रोटी भी मिल जाए, तो वह स्वादिष्ट भोजनों से अधिक स्वादु और सुखदायक सिद्ध होती है। किसी ऐसे विचार रखने वाले सज्जन ने भगवान् से प्रार्थना की है :—

साइँ एता दीजिए, जा में कुटुम्ब समाए।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाए ।।

धर्म से कमाया हुआ धन आम तौर पर अच्छे कामों पर

ही लगता है। इससे सारे समाज को फायदा पहुंचता है। यदि ऐसे धन से हमारी पारिवारिक स्थिति ही सुधर जाए, तो भी यह कम नहीं।

जहां तक धर्म का सवाल है, इसके लिए हमें संकुचित दृष्टि से काम नहीं लेना चाहिए। वास्तव में सत्य के दो रूप नहीं होते। सत्य सदा एक-सा रहता है। दुनिया में कुल धर्मों का तत्व भी सत्य ही है। विभिन्न धर्मों के नाम पर कई लोंग दूसरों को बहकाने और भड़काने का यत्न भी करते हैं। इसमें उनका अपना स्वार्थ छिपा होता है। वरना कोई भी धर्म किसी दूसरे धर्म के अनुयाइयों से बैर रखना नहीं सिखाता। कवि ने सच कहा है :—

खुदा के नाम पर दोस्तो गरेबां हैं खुदा वाले।
है जिस कदर जिक्रे खुदा, खौफे खुदा कम है।।

खुदा का नाम लेने मात्र से कोई पुण्यात्मा नहीं हो जाता। जब तक 'मन का फेर' नहीं मिटता, माला फेरना व्यर्थ है। हर एक मन्दिर जाने वाला प्रभु प्रेमी ही नहीं होता। सत्य और धर्म हमें दया और भ्रातृभाव सिखाते हैं। दुनिया में सब से बड़ा धर्मात्मा वही हैं, जो निःस्वार्थ मन से जगत्-कल्याण के लिए कार्यरत रहे। दीन-दुःखियों की सेवा भगवान् की सच्ची उपासना है।

जीवन में ध्येय का निश्चित कर लेना बहुत ही जरूरी होता है। जिस जीवन का कोई ध्येय ही न हो, वह निरर्थक और निकम्मा बन कर रह जाता है। जब हमारी कोई मंजिल ही नहीं, तो हम पहुंचेंगे कहां ? ध्येय चाहे बहुत बड़ा न हो;

परन्तु इससे हमारे जीवन को दिशा तो मिल जाती है। निश्चित रूप से, जैसा हमारा ध्येय होगा हम उसी के अनुसार अपनी जीवन-पद्धति बना लेंगे।

ध्येय की प्राप्ति में अड़चनें और मुश्किलें आ सकती हैं, परन्तु घबराने से काम नहीं चलता। ईश्वर ने हमें दिल दिया है, दिमाग दिया है और परिश्रम करने का सामर्थ्य दिया है। मनुष्य भाग्य के हाथों में कठपुतली अथवा खिलौना नहीं। वह दूसरों की दया और सहायता पर ही आश्रित नहीं। वह तो स्वयं अपने भविष्य और भाग्य का निर्माता है। आत्म-विश्वास जीवन की धुरी है। कहा है: 'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।' जिसने दिल छोड़ दिया, वह हार गया। आत्म-विश्वास से भी अधिक ईश्वर-विश्वास हमारे स्तम्भन का साधन है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि हम सर्वशक्तिमान् भगवान् का अंश हैं। फिर कमजोरी और परेशानी किस बात की ?

जो बना तेरे दर की खाक, परेशान न रहा।

मनुष्य को चाहिए कि भरपूर यत्न के अनन्तर सब कुछ भगवान् पर छोड़ दे।

जरूरी है कि हम मनुष्यों की तरह जीना सीखें, और यदि मरने की नौबत भी आ जाए तो मनुष्यों की तरह संघर्ष करते हुए परमगति को प्राप्त करें। बेबसी की जिन्दगी को हम कहां तक सम्भाले रखेंगे ? आखिर एक दिन तो जाना ही है। कहा है :—

बेबसी की जिन्दगी किस काम की।
बेकसी की मौत भी अच्छी नहीं॥

सफ़र के साथी

'आए अकेला, जाए अकेला' एक अटल सत्य है। हर प्राणी का अपना-अपना पृथक् अस्तित्व है। हर एक के जुदा-जुदा कर्म हैं और तदनुसार जुदा-जुदा भाग्य हैं। तो भी हम जीवन अकेले नहीं काट सकते। कई बार लोग साथियों, मित्रों, सम्बन्धियों और समाज के हाथों तंग भी हो जाते हैं परन्तु वह समाज से अलग नहीं हो सकते। भगवान् ने हमें एक लड़ी में पिरो दिया है। मिलकर हम एक सुन्दर माला का रूप धारण किए हुए हैं। बिखरने पर हम धूल में मिल कर रह जाते हैं। अकेला पन वैसे भी अखरने लगता है। अकेले में जी नहीं लगता। कवि कहता है :—

बेहतर तो है यही कि न दुनिया से दिल लगे।
पर क्या करें जो काम वे दिल लगी चले।।

जिन्दगी में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। हमें अनेक मुसीबतों से दो-चार होना पड़ता है। दुःख-दर्द सहने पड़ते हैं। हमें सहानुभूति और सहायता की आवश्यकता होती है। कोई किसी की व्यथा को तो नहीं बांट सकता, परन्तु सान्त्वना के दो शब्द तो दे सकता है। तप्त मन और दुःखी आत्मा पर दया और प्रेम की मरहम तो लगा सकता है। इसमें तो कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, कुछ असुविधा सहनी नहीं पड़ती।

अफसोस से कहना पड़ता है कि आज का इन्सान बिल्कुल बदल गया है। उसका सारा समय और उसकी सारी शक्तियां केवल स्वार्थ-सिद्धि के निमित्त हो चुकी हैं। वह संकीर्णता के

जाल में फंसा हुआ है, उसे नाक की नोक से आगे नजर ही नहीं आता। दोस्ती और सौहार्द उसे झूठी भावुकता प्रतीत होते हैं। सौजन्य के तो वह नाम तक से अपरिचित है और आदर्शों को वह पांव तले रौंद चुका है। जरा हवा ने रुख बदला नहीं, कि मित्र-मण्डली आलोप हो जाती है। जो साथ मरने का दावा करते थे, वे अन्तिम संस्कार के समय भी अन्य व्यस्तताओं के कारण नहीं पहुंच पाते।

देखने में आता है कि जिस चीज की बहुतायत हो जाए, उसकी कद्र (कीमत) कम हो जाया करती है। हो सकता है, बढ़ती हुई जनसंख्या भी किसी हद तक इन्सान के गौरव को कम करने का कारण हो। आज मानव अपनी मर्यादाओं से परे हट गया है, अपने उच्च आदर्शों को छोड़ चुका है। जब उसके जीवन में संयम ही नहीं, तो वह त्याग क्या करेगा? आज उसकी आंख में शर्म नहीं, उसे बुराइयों से कब संकोच होगा? आज उसके मन पर स्वच्छन्दता की छाप है, तो वह नियम और नियन्त्रण में क्यों रहेगा?

आज का जीवन अत्यन्त समस्यापूर्ण है, एक दम अनुभव-हीन! संघर्ष, वैमनस्य और कटुता इसमें कूट-कूट कर भरे हैं। कोई किसी का नहीं। दोस्ती पालीटिक्स का रूप धारण किए है। रिश्तेदारी एक दिखावा है और प्रेम एक रंगीन धोखा। मन कहीं नहीं ठहरता, किसी को अपने सा नहीं पाता। फिर जीवन का साथ कैसे हो? थोड़ी दूर चले, कि बिछड़ गए, बिल्कुल रेलगाड़ी के मुसाफिरों की तरह।

फिर भी हमें धोखा देने और खाने की आदत सी हो गई

है । हम बड़े-बड़े आडम्बर रचते हैं, बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं, दोस्ती का दम भरते हैं, कभी जीते और कभी मरते हैं । न जाने क्या-क्या स्वांग भरते हैं, क्या-क्या सपने संजोते हैं ?

हम भूल जाते हैं कि यदि सफर में एक भी साथी अच्छा मिल जाए, तो सारा सफर अच्छी तरह कट सकता है । बड़ी से बड़ी मुश्किल पर काबू पाया जा सकता है । कहा है :—

हमसफर गर यार है, तो यह सफर कुछ भी नहीं ।

सच्चे जीवन-साथी पाने का केवल एक ही तरीका है, और वह है सब क्षुद्र भावों का परित्याग । दूसरों को वही अपना बना सकता है जो स्वयं 'अहं भाव' (खुदी) को छोड़ दे और सबको अपने समान माने । हमें दूसरों के साथ सदा ऐसा व्यवहार करना चाहिये जैसा कि हम चाहते हैं कि वह हमारे साथ करें । इस बारे में हमें महाभारत का यह प्रसिद्ध वाक्य याद आता है—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

'धर्म के सार के बारे में सब के विचार सुनो और मन में धारण करो कि जो काम अपने प्रतिकूल हो अर्थात् अच्छा न लगता हो, वह दूसरों के प्रति मत करो ।'
कितना साम्य है दोनों विचारों में !

मुस्करा के जियो

एक कवि ने लिखा है :—

ए शमा, तेरी उम्र तबीह है एक रात ।
हंसकर गुजार, या इसे रोकर गुजार दे ॥

हंसकर गुजारोगे तो रात जल्द कट जायेगी, परन्तु रोने-धोने से वह ग़म की लम्बी अन्धेरी रात बन जायेगी। दुनिया में आए हैं, तो जीना ही पड़ेगा। क्यों न जीवन को हंस कर गुजार ? माना कि तुम्हारे दिल ने बहुत सदमे सहे हैं, सख्त चोट खाई है और घाव बहुत गहरा है, परन्तु कराहने से क्या फायदा ? क्या तुम 'आह-आह' करने की बजाय 'वाह-वाह' नहीं कर सकते ? आह-आह करने से पीड़ा कम होने से तो रही। कम से कम, वाह-वाह सब्र का द्योतक तो है।

कई बार जिन्दगी इन्सान के लिए एक विडम्बना बनकर रह जाती है। कोई उम्मीद पूरी नहीं होती। कोई बात सिरे नहीं चढ़ती। कदम-कदम पर निराशा का मुंह देखना पड़ता है, और ऐसा अनुभव होने लगता है कि किस्मत हमें मुंह चिढ़ा रही है। ऐसी परिस्थिति में भी इन्सान को अपना मानसिक संतुलन नहीं खोना चाहिये। उसे भूलना नहीं चाहिए कि रात चाहे कितनी भी लम्बी क्यों न हो, आखिर सूर्य के उदय होने पर दिन में बदल जाएगी। जिन्दगी के भोंडेपन को भूल जाओ और उसके मज़ाक में आनन्द लो।

संसार में अनगिणत दुःख हैं—शारीरिक, मानसिक अथवा आत्मिक। यहां बीमारी, गरीबी, बेरोजगारी और बुढ़ापे ने अपना डेरा डाल रखा है। यहां नेत्र-हीन, बहरे, गूंगे, पागल और अपाहज लोगों की बेबसी और बेचारगी हमें दृष्टिगत होती है। हमारा मन प्लावित हो उठता है, परन्तु इन सबका एक ही इलाज है और वह है उत्साह, आशा और अनथक प्रयास। हिम्मत हारने से काम नहीं चलता। कवि कहता है :—

बाहों से तो बन सकती है कोई बात।
आहों से यह हालात बदलने से रहे॥

इन्सान को चाहिए कि वह निरन्तर संघर्ष करे और दृढ़ता पूर्वक हालात का मुकाबला करे। आदमी अग्नि-परीक्षा में से कुन्दन बनकर निकलता है। परीक्षा से भाग निकलना बहादुरी नहीं, भीरुता है। कहा है :—

बशर को लाजम है कि मुस्करा के जिए।
वरना आदमी उलझन है जिन्दगी के लिए॥

कई लोगों को आप हमेशा परेशान और खोए हुये पायेंगे। वे अपने विचारों के बोझ से ही दबे जाते हैं। उन्हें सबसे अधिक अपने आप से बचने की जरूरत होती है। जो आदमी अपने विचारों पर काबू नहीं पा सकता, वह कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। आखिर बात ही क्या है ? आत्म-विश्वास भी कोई चीज है। भगवान् पर भरोसा रखना चाहिये। उसके घर में पूरा-पूरा न्याय है। यदि वह हमें दण्ड भी दे, तो उसे खुशी से झेल लेना चाहिए। उसके गुस्से और दण्ड में भी हित और प्रेम निहित है। और तो और, उसका 'बुलावा' भी नयी जिन्दगी का पैगाम है :—

हर एक रंज में राहत है आदमी के लिए।
पयामे मौत भी मुजदा है जिन्दगी के लिए॥

सन्तोष दुनिया की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। आधुनिक काल में सन्तोष की बहुत कमी है। मांगना हमारी प्रवृत्ति बन गई है। हम हर समय 'और, और', की रट लगाये रहते हैं। भगवान् ने हमें जो दिया है, उससे हमारी सन्तुष्टि नहीं होती। यदि कुल दुनिया के सुख और सम्पत्ति भी हमें प्राप्त हो जायें, तो भी हम प्रसन्न नहीं हो पाते। तृष्णा हमें छोड़ती ही नहीं।

दई दई क्यों करत है मूर्ख, दई दई सो कबूल।
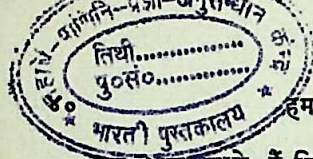
हम भूल जाते हैं कि दुनिया में और लोग भी हैं, उन्हें भी जीने का हक है। उन्हें भी जीवन सामग्री की जरूरत है। दुनिया की सारी दौलत सिमट कर हमारे ही पास क्यों आ जाये ? निजी हित से ऊपर उठना मनुष्यता की सबसे बड़ी परख है। जब तक हम संकुचित विचारों को नहीं छोड़ते, हमें दूसरों के अधिकारों का ख्याल नहीं आ सकता। आजकल की सत्ता की दौड़ में मैत्री और सौहार्द कहां ? सेवा-भाव कैसा ? हमें भूलना नहीं चाहिये कि सब कुछ प्राप्त करने का तरीका स्वार्थ को छोड़ना है। भगवान् भी तभी मिलते हैं जब खुदी मिट जाती है :—

खुदी जब तलक है, खुदा से जुदा है।
खुदी मिट गई, तो खुदा ही खुदा है ॥

मंजिल की ओर

लोग मृत्यु के नाममात्र से कांप उठते हैं। वह इसकी छाया तक से भयभीत हो जाते हैं। सुखी लोगों की तो बात ही दूसरी है। दुःखी से दुःखी प्राणी भी प्राणों की हर हालत में रक्षा करना चाहता है। परन्तु मौत का नियम अटल है। 'आया है सो जायेगा, राजा रंक फकीर।' एक दिन हमें इस दुनिया से जाना ही है। कहा है :—"मरणमेव प्रकृतिः शरीरीणाम् ।" और यदि कोई प्रमाण ही मांगे, तो निशिदिन जलता हुआ श्मशान इसकी गवाही दे सकता है।

तो क्या अन्त में मिट्टी के मिट्टी में मिल जाने का नाम ही जीवन-गाथा है ? क्या यही जीवन-यात्रा का ध्येय है ? जो लोग ऐसा समझते हैं, वह कुछ नहीं समझते। वह प्रकृति के

मुख्य नियम से कि किसी चीज का नाश नहीं होता, अनभिज्ञ होते हैं। विविध द्रव्य अथवा आत्मायें केवल शक्लें बदलते हैं। विशेषतः, आत्मा का अस्तित्व खोना तो अविचारणीय है।

मौत, वास्तव में, चोला बदलने का दूसरा नाम है। जब किसी जीवन-पथिक के प्रस्थान का समय आ जाता है, तो वह रुक नहीं सकता। सबको छोड़, वह अकेला अपनी राह लेता है और उसके कर्मों के अनुसार उसे नया जीवन मिल जाता है। जिस भगवान् ने मनुष्य को कर्म करने की पूरी आजादी दे रखी है, उसी के अटल नियमों के अनुसार मनुष्य को न्यायोचित फल मिल जाता है। जन्म-मरण के इस चक्र को आवागमन का चक्र कहते हैं। तृष्णाओं और भोगों में आसक्त प्राणी इस चक्र से निकल नहीं पाता और एक के अनन्तर दूसरी योनि में घूमता रहता है, उसे 'ठौर' नहीं मिलता। अलबत्ता, जिन्होंने अपने आपको सम्भाल लिया होता है और जो सांसारिक विषयों में नहीं फंसते, उन्हें उच्चतम पुनर्जन्म मिलता है। कई निष्ठामय भाग्यशाली व्यक्ति तो मोक्ष तक प्राप्त कर लेते हैं। कबीर जी ने कहा है :—

जा मरने से जग डरे, मोरे मन आनन्द।
मरने सो ही पाइए, पूरण परमानन्द॥

बात केवल अच्छे कर्मों की है। जिन्होंने जीवन में अच्छे काम किये हैं, उन्हें दुनिया छोड़ते समय कोई तकलीफ नहीं होती। कोई बोझ उनके मन पर नहीं होता और उन्हें अपने कर्मों के परिणाम भुगतने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं होती। वे तो मौत से यूं मिलते हैं जैसे किसी बिछड़े हुए प्रिय जन से मिलें। बड़े-बड़े लोगों की जीवनियां हमें उनके अपूर्व साहस और मनो-
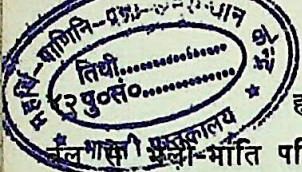
...से भली-भांति परिचित कराती हैं। गुरु गोविन्दसिंह जी ने आह्वान किया था कि हमें ऐसी 'करनी' कर दिखानी चाहिये कि फिर हमें बार-बार मरना न पड़े और जब हम दुनिया से जायें तो हम प्रसन्न-चित्त हों और दुनिया वाले हम से जुदा होने पर रोयें।

यह दुनिया कर्म-क्षेत्र है। मनुष्य योनि पाकर ही हम शुभ कर्म कर सकते हैं। कर्म करते हुये हमें उसके फल में आसक्ति नहीं होनी चाहिये, बल्कि हमें सब कुछ भगवान् के न्याय पर छोड़ देना चाहिये। भगवान से किसी अन्याय की उम्मीद हो ही नहीं सकती। अच्छे कर्मों का नतीजा कभी बुरा नहीं हो सकता—यह श्रद्धा और विश्वास की बात है।

जहां हमें स्वयं अच्छे काम करने की जरूरत है, हमें समाज के अन्य सदस्यों को भी ठीक मार्ग पर चलाने का यत्न करना चाहिये। ऐसा करने से उपयुक्त वातावरण उत्पन्न होता है और लोग सत्य मार्ग को अपनाने लगते हैं। इसी में हमारा और हमारे साथियों का कल्याण है।

प्राय: देखने में आता है कि अच्छे आदमी दुनिया से अलग-थलग रहने का यत्न करते हैं। वे तो केवल अपना दामन बचाने को ही जीवन-ध्येय मानते हैं। अच्छा होने के बावजूद उनका जीवन आदर्शमय नहीं कहा जा सकता। दब कर, सहमे हुए जीवन बिताना निर्भयता का प्रतीक नहीं। मनुष्य को चाहिये कि वह दुनिथा की गति में सक्रिय भाग ले और इसे सत्य-पथ पर चलाये। हमें अच्छाई और नेकी का तूफान बन कर जीने का यत्न करना चाहिये। हमारा मन और हमारी आत्मा तभी पूरी तरह विकसित हो सकते हैं जब सर्वत्र सत्य की जय हो।

श्रीमती सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट

एम-१०, लाजपत नगर नं० ३, नई दिल्ली-२४

द्वारा प्रकाशित साहित्य

श्रीमती सुलखनी देवी महाजन धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना जुलाई १९६८ में डाक्टर विद्याधर महाजन, एडवोकेट सुप्रीम कोर्ट, लाजपत नगर, नई दिल्ली ने अपनी पूज्या माता जी की पुण्य-स्मृति में की और अपना निवास स्थान M-10, लाजपत नगर, नई दिल्ली ट्रस्ट को दान में दे दिया। इसके अतिरिक्त ट्रस्ट के काम को सुचारू रूप से चलाने के लिए धन का प्रबन्ध कर दिया। ट्रस्ट का उद्देश्य देश की हर प्रकार से भलाई करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ट्रस्ट ने निम्नलिखित पुस्तकें मुफ्त बांटने के लिए छापी हैं :—

१. सन्ध्या तथा हवन मन्त्र
२. वैदिक सन्ध्या
३. देश-भक्ति के गीत
४. ईश्वर-भक्ति के गीत
५. मनुष्य स्वस्थ कैसे रह सकता है (आचार्य हरदयाल)
६. दैनिक रोगों की सरल चिकित्सा (आचार्य हरदयाल)
७. आहार और स्वास्थ्य (आचार्यहरदयाल)
८. दैनिक योग आसन (महाशय बिशन दास)
९. आदर्श जीवन कथाएं (विमला मेहता)
१०. दांतों की सुरक्षा (डा० एम०एल० वाट्स)
११. राजस्थान का गौरव (चन्द्रमोहन बुद्धिराज)
१२. प्रभु-भक्ति का मार्ग (ईश्वरदास चोपड़ा)
१३. हमारी जीवन यात्रा (अवतार कृष्ण भारद्वाज)
१४. महर्षि दयानन्द सरस्वती (महात्मा नारायण स्वामी)
१५. सुखी तथा सफल जीवन, जीवन ज्योति, लाख-लाख की एक बात, आदर्श गृहस्थ जीवन, ब्रह्मचर्य ही जीवन है, मानव और उसका मन (कांशी राम चावला)

16. Preserving Unity of Indi
to India (*by* Chief Justice
17. Secularism and Univers
J.M. Shelat)
18. Law and Lawyers (*by* Ch
19. Democracy in India and I
20. India in the Changing W
21. Gems of Wisdom, Be
Uplift, Learn to Live, Ha
Are a Living Force, L
Peace of Mind, Meet Goc
Ram Chawla)

22. Domestic Roots of India's Foreign Policy (*by* Dr. A. Appad rai)
23. Instructio.. for Diabetics (All India Medical Institute)
24. Heart Attack (*by* Dr. B.N. Bhandari)
25. Mental Tension and Heart Disease and How to Control it with Newer Techniques (*by* Dr. K.K. Datey)
26. Dental Health (*by* Brig. Dr. Mulk Raj)
27. Care of Your Eyes (*by* Dr. M.S. Aggarwal)
28. How to Solve Problem of Worry ?
29. Yoga for Health and Vitality
30. How to be Healthy ? (*by* Achary Hardayal Vaidyavachaspati)
31. Spiritual Glory (*by* Ishwar Das Chopra)
32. Student's Manual (*by* John Todd)
33. Swami Dayanand (*by* Har Bilas Sh da)
34. Understanding Your Child Husband-Wife Relations (*by* Dr. Satish C.
35. To Young Student—Friends (*by* P.B. Chandwani)
36. Sadhana and Sadhak (*by* Vimala Thakar)

मुद्रक : रायसीना प्रिंटरी, ४ चमेलियन रोड, दिल्ली-६